फूल खिले काँटों में

मोहनलाल जैन

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि.
एम. आई. रोड, जयपुर 302 001
दूरभाष : 373822, 362468

अभिकल्पन : सत्यदेव सत्यार्थी

प्रकाशक :
प्रगति प्रकाशन
शार्प डायमंड टूल्स प्रा. लि.
बी-49, लालकोठी शॉपिंग सेन्टर
टोंक रोड, जयपुर 302015
दूरभाष : 515921



मंगलसंदेश

अणुव्रती मोहन भाई की कविता इतनी प्रियता लिये चली कि इसका दूसरा संस्करण छपाना पड़ रहा है। पता नहीं मोहनजी ने कविता बनाना किससे सीखा, कहाँ से सीखा, पर कवि बनता नहीं, जन्मता है।

इसी कारण से भाई मोहनजी की कविताएँ आकर्षित तो करती हैं हीं, भेदक भी हैं। मैं जब कभी इनकी कविताएँ पढ़ता हूँ, मुझे रुचिकर लगती हैं। मेरा ख्याल है हर पाठक को रुचिकर लगेंगी। हर पाठक को रुचिकर लगें और भाई मोहनजी का प्रयत्न सफल हो, यही अपेक्षा है।

दिनांक
27.10.1994

अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी
आध्यात्म साधना केन्द्र
छतरपुर रोड, महरौली
नई दिल्ली

समर्पण

सेवा
सादगी
समता की
त्रिवेणी
स्नेहमयी माँ के
चरणों में
फूल खिले
काँटों में ।





वैचारिक यात्रा

मेरे बाल-सखा श्री मोहनलाल जैन की काव्यकृति 'फूल खिले काँटों में' पढ़ कर मुझे प्रसन्नता हुई । कुछ समय पहले जब श्री जैन कलकत्ता आये थे तो उनके ही मुख से उनकी कुछ कवितायें सुनी थीं, मुझे अच्छी लगीं ।

'फूल खिले काँटों में' की कवितायें संवेदनाजन्य हैं, अतः मन को छूती हैं । मेरी कामना है कि श्री जैन अपनी विचार-यात्रा की मंज़िल तक पहुँचें ।

3 मैंगो लेन
बीबीडी बाग
कलकत्ता 700001
गणतंत्र दिवस, '95

कन्हैयालाल सेठिया

शब्दशिल्पी की चुभन

शब्द के प्रकाश से ही साहित्यकार का जीवन, पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन ज्योतित होता है, यदि शब्दशिल्पी, शब्दकर्मी न होता तो हमारे जीवन का प्रत्येक कोना निविड़ अन्धकार में डूबा हुआ होता। वस्तुतः शब्द ही उसका प्रस्थान विन्दु है और शब्द ही उसकी मंजिल; और पड़ाव भी। शब्द ! शब्द !! शब्द !!! कवि, कहानीकार, व्यंग्यकार, नाटककार, उपन्यासकार अर्थात् साहित्यकार को चाहिए 'बस दर्द का एक अहसास', 'पीड़ा का एक समुच्च्य', 'संवेदना का एक अन्तहीन सिलसिला।'

काव्य के क्षेत्र में भूखी पीढ़ी, नंगी पीढ़ी, श्मशानी पीढ़ी, अर्द्ध-विक्षिप्त पीढ़ी जैसी अनेक पीढ़ियाँ भी आयीं और चली गयीं। देह की राजनीति को अस्वीकार करने के उपरान्त, मूल्यहीनता के झण्डे के नीचे एक-दूसरे को ललकारती हुई कविता, विचारधारात्मक स्तर पर कभी प्रतिक्रियावादी हुई तो कभी प्रतिगामी, कभी प्रगतिकामी हुई तो कभी प्रगतिशील; तो फिर कभी जनवादी हो गयी। कवियों की संख्या बढ़ती जा रही है पर कविता सिकुड़ती जा रही है। समाचारपत्र और साहित्यिक पत्रिकाओं में कवियों के जो पते दिये रहते हैं उनका पारायण करने से पता चलता है कि कवियों की बाढ़ आ गयी है प्रत्येक महानगर में। और छोटी-मोटी नदी, सरोवर तो ढाणी-ढाणी, गाँव-गाँव में दृष्टिगोचर हो जाएँगे, किन्तु अधिकांश कवि बिम्ब, प्रतीक और अलंकारों की आड़ में शाब्दिक खेल खेल रहे हैं, उनकी कविताओं में जीवन-मूल्यों के प्रति कोई आग्रह दिखाई नहीं पड़ता, न ही दर्द और न ही कोई बेचैनी। परिणामस्वरूप कविता अपनी धार खो चुकी है न वह देश को, न काल को और न ही परिस्थिति को समर्पित है। या तो वह घनघोर आंचलिकता में डूबती जा रही है या फिर पुरस्कार की राजनीति में। काव्य कर्म के कारक तत्त्व 'जीवन' और 'संघर्ष' के परिधि से बाहर खदेड़ दिए गए हैं।

ऐसे में एक महाकर्मयोगी, निःस्वार्थ समाजसेवी, सौशील्य गुण सम्पन्न, अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति तुलसी के अहर्निश कृपाकांक्षी, अणुव्रती मोहनलाल जैन के काव्य संग्रह 'फूल खिले काँटों में' का दूसरा संस्करण ठीक एक दशाब्दी बाद आया तो लगा कि उनकी रचना की सार्थकता और उसकी सार्वजनीनता एक खुशफहमी है। शिक्षा, महिला उद्धार, अछूतोद्धार, मद्य निषेध और अणुव्रत के कार्य के साथ-

साथ वे कविता संसार में रमण कर रहे हैं, यह एक दुर्लभ गुण है। उनके कविता कर्म में चिन्तन की गम्भीरता और कथन की सहजता का अद्‌भुत सामंजस्य है। ऊपर से कथ्य सीधा सपाट लगता है किन्तु पकी फली में जैसे दाने की अर्थगरिमा होती है, वैसी उसमें बजने लगती है। भाषा की सरलता और वाग्विदग्धता से पूर्ण चौंसठ कविताएँ मन को शीतलता और परम शांति प्रदान करती हैं। जब वे कहते हैं :

'हर मुसीबत/दे गयी/रोशनी नयी।/मौत भी आयी/कई बार/लौट गयी खाली हाथ' तो स्पष्ट हो जाता है कि हिम्मत से सभी बाधाएँ स्वमेव दूर हो जाती हैं। फिर साहस का जलजला देखिये :

'पूछा हमने मुसीबतों से – लौटकर कब आओगी?/बोली मुसीबतें/क्या खाक़ आयेंगी!/कभी समझा तुमने/हमें मुसीबत !!' संघर्षशील भावुक मन, मोहनजी की काव्य प्रतिभा का लोहा तो मनवा लेता है, जब वे कहते हैं :

'मेरे घावों से/खेलने में/तुम्हें/कितना आनन्द आता है,/मैं नहीं जानता।/मेरे अभावों पर/हँसने में/तुम्हें/कितना/मजा आता है,/मैं नहीं जानता/पर इतना अवश्य जानता हूँ/ कि जिस दिन/मेरे घावों से/फूटेंगे लाल-लाल फव्वारे/और मेरे अभावों से/बरसेंगे लाल-लाल अंगारे,/उस दिन भी/मेरे मन में/तेरे प्रति दया होगी। /पर अफ़सोस मित्र/मैं तुम्हें/बचा नहीं सकूँगा।' अन्याय पर न्याय की विजय, अत्याचार-अनाचार पर सदाचार की विजय, बुराई पर अच्छाई की विजय की भावना का अवगाहन करते हुए, वे कहते हैं :

'हर वर्ष/रावण के/सौ-सौ पुतले/जलाये जाते हैं। /एक-एक पुतले से/मगर/सौ-सौ रावण/निकल आते हैं।' और अन्त में उनकी मर्मस्पर्शी कविता :

'काँटों में/चलते-चलते/अब फूलों की/चाह नहीं रही।/कहाँ है/फूलों में/काँटों जैसा/अपनापन।'

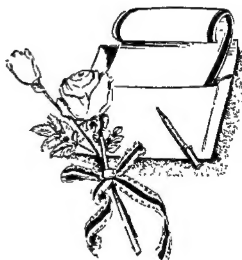
पर खेद का विषय यह है कि मोहनलालजी जैन की रचनाओं का सही मूल्यांकन नहीं हुआ, उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ शिविरबद्धता के कारण जनवादी लेखक, प्रगतिशील लेखक, जनसंस्कृति की किसी परिधि में नहीं आतीं फिर भी इनकी कविता मानवीय आत्मा की सौन्दर्यमयी प्रस्तुति है। अस्तु जैनसाहब को साधुवाद।

'गीतांजलि' — श्रीकृष्ण शर्मा

26, मंगलमार्ग, बापूनगर, जयपुर-15 अध्यक्ष, 'शब्द संसार'

स्वकथ्य

संघर्ष भरी
लम्बी दौड़ में
कटु-मधुर
अनुभवों के
कोमल-कठोर
निचोड़ को
रद्दी-सद्दी कागज के
टुकड़ों में
बाँधता रहा,
इधर-उधर
डालता रहा;
बेटे-बेटियों ने
बटोरा,
स्वजन-परिजनों ने
जोड़ा-सँवारा ।
धूल में
पनपती रही मूल
काँटों में
खिलते रहे फूल ।



हिम्मत करके
चढ़ गया
तो बाधाएँ हटती गयीं
संघर्षों में
डट गया
तो सफलताएँ मिलती गयीं
हर मुसीबत
दे गयी
रोशनी नयी ।
मौत भी आयी
कई बार
लौट गयी खाली हाथ



गिरती दीवारों से
सावधान रहो,
भ्रमित न हो !
इनके रंग-रूप से ।
हर खोखलापन -
ढका हुआ है
सुन्दर चित्रों से,
भरा हुआ है
सर्वभक्षी
दीमक से।



जन्म के साथ
जुड़े हैं
हजार झंझट,
और मौत के साथ
मिट जाते हैं
तमाम झंझट।
जन्म पर सब
खुश होते हैं
और मौत पर सब
दुःखी होते हैं,
क्या सबको
झंझट ही
प्रिय होते हैं"



जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी
कँटीली
पगडण्डियों पर,
चलते-चलते
मिल जाती है
जो जीने की कला ।
क्या यह
मिल पाती है
विश्वविद्यालयों में भला!



एक के बाद एक
मुसीबत आती रही
एक से बढ़कर एक
गज़ब ढाती रही।
कुछ दिन रही
फिर चल दी।
पूछा हमने मुसीबतों से -
लौटकर कब आओगी ?
बोली मुसीबतें
क्या ख़ाक आयेंगी !
कभी समझा तुमने
हमें मुसीबत !!



कभी किसी समय
किसी जरूरत पर
किसी व्यक्ति ने
खींच दी थी
एक लकीर।
वह समय नहीं रहा,
वह व्यक्ति नहीं रहा,
पर रह गयी
वह लकीर।
पीट रहे हैं आज भी उसे
लाखों करोड़ों फ़क़ीर !



जीवन की
समस्याओं के
ऊँचे-नीचे पहाड़ों से
सुख की नदियाँ बहाओ।
चिन्ताओं की
चिलचिलाती धूप में
शान्ति की छाया का
अनुभव करो
कठिनाइयों के
नुकीले काँटों में
सफलताओं के
फूल खिलाओ।
साहस बटोरो,
कदम बढ़ाओ,
सम्भव बनाओ
असम्भव को।



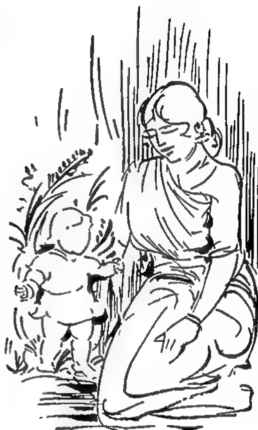
बड़ी लगन से
बड़े श्रम से
तान-बान कर
मकड़ी बनाती
जाल अति सुन्दर।
उसी जाल में
सर्वस्व गँवाती
आखिर फँसकर !



कितनी बार
समझाया मन को,
कम देखकर बाहर,
ज्यादा अन्दर।
पर तब वह
नहीं समझ पाया,
बीतता गया समय
भटकता रहा वह।
अब जबकि
दृष्टि खो गयी,
स्मृति सो गयी,
तो रह गयी है
उपलब्धि के नाम पर
अतीत की विकृति।



पौधों को
सहारा न दो
जड़ें कमजोर रह जायेंगी।
हवा के
थपेड़े लगने दो,
जड़ें मज़बूत हो जायेंगी।



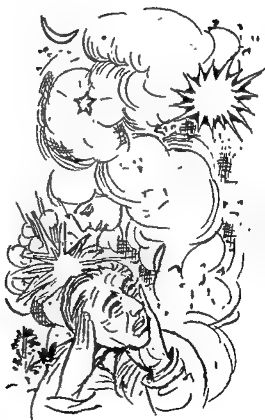
प्रशंसक -
कितना प्रिय,
कितना मधुर,
कितना निकट।
निन्दक -
कितना अप्रिय,
कितना कटु,
कितना दूर।
पर याद रखो
ख़तरा
निन्दक से नहीं
प्रशंसक से है!!



आदमी ने
घर के घेरे से
बाहर निकल कर देखा -
पहाड़ खड़ा है
स्थिर, सुदृढ़, ऊँचा।
दूसरी ओर
सागर फैला है
व्यापक, गहरा, लहराता।
उसने धरती को देखा
विशाल, विस्तृत, महान्।
उसने अपने को देखा
हीनता का अनुभव हुआ।
भावना जगी
झाँका अन्तर में
देखा वहाँ -
पहाड़ भी है, सागर भी है, धरती भी है।



हर चेहरा
लगता है
पहचाना-सा।
हर घटना
लगती है
घटित हुई-सी।
यह धरती
वह आसमान
सूरज
चाँद-सितारे
दिन-रात
लगता है
सब कुछ जाना-पहचाना,
केवल स्वयम् ही
रह गया अनजाना।



धर्म-स्थानों को
जाने वाले रास्तों पर
बैठ कर,
आने-जाने वालों को
देखते रहो।
चेहरों की
सुन्दरता देखो
बनावट देखो
कला देखो,
पर अन्दर न झाँको
केवल
मुखौटों को आंको!



ईंट पर ईंट
उठती रही,
और
मंज़िल पर मंज़िल
चढ़ती रही।
बस यूँ ही
सपनों से बुनी
ज़िन्दगी बीतती रही।
न मंज़िल मिली
न ज़िन्दगी बनी,
लाये थे जो दौलत
वह लुटती रही !



अपनी तो
न गणेशजी से पटी,
न लक्ष्मीजी से पटी,
सारी ज़िन्दगी
इन दोनों से
बिना पटे ही कटी।
जब जवानी में ही नहीं पटी
तो अब बुढ़ापे में क्या पटेगी ?
अपनी ज़िन्दगी तो
इन दोनों से
बिना पटे ही कटेगी।



पीड़ाओं का
तेल डाल कर
हम जलाते हैं
दीप हँसी के।
वेदना के
स्वरों में
हम गाते हैं
गीत खुशी के।
ये क्या समझेंगे
हमको
जो नहीं समझ सके
अपने को !
ये कोठियों में
घुट रहे हैं
हम फुटपाथों पर
जी रहे हैं अपनी मस्ती में।



जीवन के
धरातल पर
जम रही हैं
परतें सुविधाओं की।
होड़ लगी है
झूठी प्रतिष्ठाओं की।
आडम्बर के कोहरे में
लुप्त होती जा रही है
जीवन की वास्तविकता।
चर्चाएँ चल रही हैं
आदर्शों की
मिटती जा रही है
नैतिकता।



समय का
एक छोर
रात ने पकड़ा है,
तो दूसरा दिन ने।
जीवन का
एक छोर
मृत्यु ने पकड़ा है,
तो दूसरा जन्म ने।
दूरियाँ निकट आती रहती हैं,
निकटताएँ दूर जाती रहती हैं।
इस उधेड़बुन में
ज़िन्दगी बीतती रहती है।



सुन्दर वस्त्रों में
लिपटी क्षुद्रता
पा जाती है
स्थान हर जगह।
चिथड़ों में लिपटी
महानता
रोक ली जाती है
द्वार पर ही !



कल जब
गुज़र रहा था
मैं बाज़ार से,
एक लम्बा-सा
जुलूस निकल रहा था।
लोगों में
जोश उमड़ रहा था,
समाजवाद का
घोष हो रहा था।
बेचारा समाजवाद
किनारे खड़ा-खड़ा
रो रहा था।



रसोईघर में
प्रकाश बिजली का,
पक रहा था -
पकवान दीवाली का।
अकस्मात्
बिजली गुल हुई,
गृहणी झुंझलाई।
कोने में पड़ा
धूल भरा
दीपक उठा लाई।
झाड़ा, पोंछा, सँवारा,
बाती दी, तेल दिया,
ऊँचा स्थान दिया।
बड़े जतन से
प्रज्वलित किया।
दीपक पुलकित हो नाचने लगा
पकवान पकने लगा
तभी बिजली का प्रकाश लौट आया
दीपक का हृदय काँप गया
क्रूर हाथ के
झटके ने
दीपक को बुझा दिया
और
उसी कोने में डाल दिया।



पैरों पर

किये प्रहार,

एक नहीं

हज़ार-हज़ार।

आज नहीं

हज़ारों वर्षों से।

समझे जाते पृथक्,

बना दिये अस्पृश्य।

और अब

बनकर पंगु

चल रहा है

लंगड़ाता-लड़खड़ाता,

काश !

अब भी संभल पाता।



मेरे मित्र !
दुःख न कर
कि किसी ने तुम्हारी
इज़्ज़त नहीं की।
वरना
इन इज़्ज़त करने वालों से
बहुतों को
बेइज़्ज़त होते देखा है।



मेरे घावों से
खेलने में
तुम्हें
कितना आनन्द आता है,
मैं नहीं जानता।
मेरे अभावों पर
हँसने में
तुम्हें
कितना मज़ा आता है,
मैं नहीं जानता।
पर इतना अवश्य जानता हूँ
कि जिस दिन
मेरे घावों से
फूटेंगे लाल-लाल फव्वारे,
और मेरे अभावों से
बरसेंगे लाल-लाल अंगारे,
उस दिन भी
मेरे मन में
तेरे प्रति दया होगी।
पर अफ़सोस मित्र,
मैं तुम्हें
बचा नहीं सकूँगा।



हर वर्ष
रावण के
सौ-सौ पुतले
जलाये जाते हैं।
एक-एक पुतले से
मगर
सौ-सौ रावण
निकल आते हैं।



काँटों में
चलते-चलते
अब फूलों की
चाह नहीं रही।
कहाँ है
फूलों में
काँटों जैसा
अपनापन !



बगिया में
जब तक बहार रही,
बगिया गुलजार रही।
भीड़ लगी रही
सैलानियों की,
मनमौजियों की।
बहार खत्म हुई
बगिया उजड़ गयी।
अब कोई आता नहीं
रखता कोई नाता नहीं
उड़ती है धूल।
ऐसा ही होता है
आने पर
परिस्थितियाँ प्रतिकूल।



यह दुनियाँ
रख देती है
दिल निकाल कर
पर तब,
जबकि
सवारी पहुँच जाती है
मरघट के द्वार पर।



सागर ने
सूर्य की ऊँचाई
नापने की चेष्टा
कभी नहीं की।
न सूर्य ने ही
कभी नापी
सागर की गहराई।
इसीलिये दोनों ने
महत्ता पायी।



मुझे पहाड़ नहीं
ज़मीन पसन्द
पहाड़ से गिर कर
चूर-चूर होना
मैं नहीं चाहता।

मुझे प्रकाश नहीं
अन्धकार पसन्द
प्रकाश की चकाचौंध में
पथ-भ्रष्ट हो जाना
मैं नहीं चाहता।

मुझे सुख नहीं
दुःख पसन्द
सुख में अपनों को भूल कर
मानवता खो बैठना
मैं नहीं चाहता।



सोच रहा था कुछ
कि रो उठा हृदय।
क्या हुआ ?
पूछा मैंने।
बोला हृदय -
कीमत नहीं यहाँ मनुष्य की!
मैंने कहा -
मूर्ख ! नहीं जानता इतना भी
कि कीमत होती है
भेड़-बकरियों की।
आदमी तो
अनमोल है।



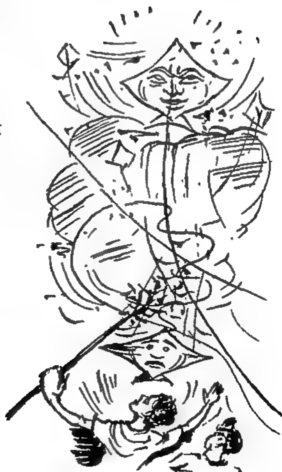
खींचती रहती हैं
जड़ें
गली-सड़ी खाद से
रस।
सम्पुष्ट होते रहते हैं
फूल भी,
काँटे भी।
समदर्शी है विटप
बहती है
जिसके हृदय में
दर्शन की
गंगा !



आज दीवाली है
निकलेगी उल्लू पर
लक्ष्मी की सवारी।
प्रिय है
अंधकार
विष्णु-प्रिया को,
जो
दर्शन में गोरी
पर
अन्तर में काली !



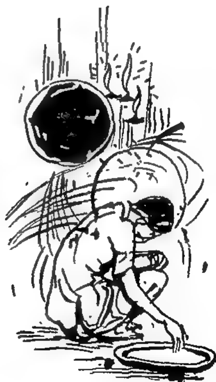
पतंग ऊँची उठी
गुड़कने लगी।
अकड़ कर
आसमान छूने लगी।
भूल गयी डोर को
जिससे बँधी थी।
भूल गयी हाथों को
जिनमें डोर थमी थी।
एक झटका लगा,
डोर टूटी
कटी पतंग
नीचे गिरने लगी।
ताक में खड़े लुटेरों ने
उसको लूट ली।



अपने ही
हृदय में लहराते,
सुख सागर के
तट पर
बैठा मन
सोचता रहा -
कब छूटेगा
पीछा
दुःख से !



हमें क्या पता -
कब आती है होली,
कब आती है दीवाली ?
हमारे लिये तो
जैसी मावस की काली,
वैसी ही पूनम की उजियाली।
हमारी तो थाली
तब भी, और भी
दोनों में ही
रहती खाली !



कितनी ऊँची
सेवा उनकी
अन्धों को पालते हैं !
खाना-वस्त्र,
सुख-सुविधा,
सब कुछ देते हैं।
सुबह बैठा आते हैं
फुटपाथों पर,
रात को ले आते हैं
उन्हें घर पर।
अन्धों को मिला
जो कुछ दिन भर,
ले लेते हैं
पैसा-पाई
गिन-गिन कर !



ऐसे भी होते हैं
कुछ माई के लाल !
जो ख़तरों से खेलते हैं,
कष्ट झेलते हैं
मिटाते रहते हैं
पीड़ा पर की,
भूल जाते हैं
सुध-बुध घर की।



लड़के वाले
माल देखते हैं।
लड़की वाले
खानदान देखते हैं।
बारातियों को
न लड़की से मतलब,
न लड़के से !
वे तो थाली में
पकवान देखते हैं !!



बड़ी दूर से आ रहे
एक
थके-माँदे राही ने,
सामने से आ रहे
राही से पूछा -
शान्ति-निकेतन का
रास्ता किधर है ?
उत्तर मिला -
जिधर से तुम आ रहे हो !



कभी अकेले में
देखता हूँ
अपने को।
शान्त वातावरण में
तटस्थ वृत्ति से
बैठता हूँ
समझने को।
कितना हल्का, कितना भारी
तौलता हूँ
धर्म काँटे पर।
कितना खोटा, कितना खरा
कसता हूँ
कसौटी पर।
बस! ये ही क्षण
होते हैं अपने,
बाकी तो सब
व्यर्थ के सपने।



नये युग के
फलाकारों की
नयी सूझ !
बुरी चीज़ों को भी
उठा के ऊपर
पहुँचा देते हैं
आसमान में ।
और
अच्छी चीज़ों को भी
गिरा के नीचे
मिला देते हैं
मिट्टी में !



पड़ोसियों के
घरों में
झाँकते रहते हैं।
नाक-भौं
सिकोड़ते रहते हैं।
और
अपने घर की
गन्दगी पर,
सुनहरा पर्दा
डालते रहते हैं।
आश्चर्य है
वे भी अपने को
बुद्धिमान समझते हैं।



हाथों को
पहुँचने दो
आसमान तक।
पैरों को
रहने दो
जमीन पर।
सन्तुलन बनाये रखो,
पैर जमाये रखो।



कुछ होते हैं
व्यक्ति ऐसे
जिनके पसीने की
एक बूँद भी
कर देती है कमाल।
आ जाती है उसमें
मोती सी आब।
हमारे पसीने की धारा तो
मिट्टी में मिलती रहती है,
उसका महत्व केवल
ज़मीन ही आँकती है।



हृदय में पीड़ा
आँखों में करुणा,
गम्भीर चेहरा
विषाद गहरा,
अजान उद्देश्य
अज्ञात लक्ष्य,
कदम बढ़ाये
जा रहा है।
कुछ बताता नहीं,
किसी को सताता नहीं।
कौन है यह ?
कहाँ जा रहा है ?
क्या हो गया है इसको ?
वाह!
कितना निराला है
यह आदमी,
काश ! इसको कोई
जान पाता !



मन्दिर के अन्दर
भीड़ भिखारियों की,
माँगती है भीख
पत्थर की मूर्ति से।
मन्दिर के बाहर
भीड़ भिखारियों की,
माँगती है भीख
पत्थर के हृदयों से।



संघर्षों की
आग में
पकाता है जो
जीवन अपना।
बाधाओं की
चट्टानों से
टकरा कर जो
आगे बढ़ता।
दुःखों की
काल-कोठरियों में
संजोयी है जिसने
दीप-शिखाएँ।
तूफ़ानों में
उड़कर जिसने
छानी है
चहुँ दिशाएँ।
कलाकार है
यह जीवन का
माली है
यह नन्दन-वन का।



कुत्ता, कुत्ते से
अछूत नहीं।
गधा, गधे से
अछूत नहीं।
कुत्ता और गधा
मनुष्य से
अछूत नहीं।
तब
मनुष्य, मनुष्य से
अछूत क्यों ?
क्या मनुष्य
पशुओं से भी
गया बीता है ?



मेरे मित्र !
समय पर
मुझे सम्भाल लेना।
असफलताओं के
घिराव से तो
मैं स्वतः बच निकलूँगा
किन्तु
सफलताओं के
शिखर पर
जब गुमराह होऊँ
तब हाथ थाम कर
बचा लेना।



वह भला आदमी
संजोता रहा
अपनी गठरी में
टुकड़े-टुकड़े भलाई।
सोचता रहा कि
साथ ले जाऊँगा
मरते समय।
क्या पता
बेचारे गरीब को !
कि गठरी के पीछे
लगे हैं चोर।
भलाई के बदले जो
भर रहे हैं
कुछ और !



जब हम
फूलों पर
न्यौछावर थे,
फूलों को
फुरसत नहीं थी
आँख उठाने की।
अब जब
हमने जोड़ लिया नाता
शूलों से,
फूलों को
लगी है लगन
हमें गले लगाने की।



सर्दी आती है
तो लोग
गर्मी की ओर
दौड़ते हैं।
गर्मी आती है
तो लोग
सर्दी की ओर
दौड़ते हैं।
पता नहीं लोग
वस्तुस्थिति से
क्यों मुँह मोड़ते हैं ?



सूरज के साथ
जुड़ी है धूप,
चाँद के साथ
जुड़ी चाँदनी।
है दोनों ही प्रकाश,
पर भिन्न-भिन्न स्वभाव
भिन्न-भिन्न प्रभाव ।



न आराम
न विश्राम
बस काम से काम।
न नाम
न इनाम
न किसी पर अहसान।
बढ़ते रहें कदम
सुबह हो
चाहे शाम,
खोलते रहें
नये-नये आयाम।



भ्रम
धीरे से
भीड़ में
घुसता है,
फैला देता है गड़बड़
मचा देता है भगदड़।
झगड़ों की
जड़ों में
रहता है
मौन
मुँह छिपाकर,
सामने आता नहीं
घात लगाता है
अन्दर-ही-अन्दर ।



जहाँ देखो
तू-तू, मैं-मैं
एक जहर
ढाता कहर
इतिहास साक्षी
खोया ही खोया,
किसी ने
कुछ नहीं पाया
पर यह रहस्य
समझदारों के भी
समझ में
नहीं आया।



दरवाज़ा बन्द है
अन्दर ताला है
बाहर ताला है,
अन्दर की चाबी
बाहर वाले के पास
बाहर की चाबी
अन्दर वाले के पास,
दोनों ही
तंग छिद्रों से
झाँक रहे हैं,
एक-दूसरे को
अविश्वास से
आँक रहे हैं।
दरवाजा खुले कैसे ?
समस्या सुलझे कैसे ?



चिन्तन में
डूबे रहते हैं,
निर्णय
झूलता रहता है।
निर्णय में
उलझे रहते हैं,
कार्य
रुका रहता है।
होती रहती हैं
बैठकें,
चलती रहती हैं
चुस्कियाँ।
ऐसे बुद्धिमानों पर
मूर्खता भी
हँसती रहती है।



वालक की माँग
पूरी नहीं होती
तब वह रोता है
रोने पर
ध्यान नहीं जाता
तब चिल्लाता है।
चिल्लाहट
सुनी नहीं जाती
तब पैर पीटता है।
पैर पिटाई भी
जब हो जाती बेकार
तब तोड़-फोड़ करता है।
बस इसी प्रकार
आक्रोश जन्मता है
और
उग्रवाद पनपता है।



जिस काम को
कठिन समझ
सब छोड़ते जायें,
जिस पथ को
काँटों भरा देख
मुँह मोड़ते जायें,
उसी काम को
हाथ में लो
उसी पथ पर
कदम बढ़ाओ।
हो सकता है
दुनिया वाले
पागल बतायें
पर
माला पहनायेंगी
सफलतायें



आज फिर
तूफान उठा है,
आँखें बन्द
गति तेज,
धूम मचाता
धूल उड़ाता,
बढ़ा जा रहा है
शान्ति की खोज में!

